अमोल रतन सिंह, जे, के समक्ष

राज मोहिंदर सिंह-याचिकाकर्ता

बनाम

सुरिंदर कौर @सुरिंदर और अन्य-उत्तरदाता

2009 का सी. आर. सं. **2566**

11 दिसंबर, 2018

सिविल प्रक्रिया संहिता, **1908**-ओ. **6** आर. एल. **17**-हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, **1956**-धारा **6**-प्रवर्तन में संभावित मूल प्रावधान का संशोधन-**2005** के संशोधन के आधार पर वाद का संशोधन-चुनौती-आयोजित, अधिनियम की धारा **6** में संशोधन **20** दिसंबर, **2004** से पहले अर्जित अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा-इसके बाद प्रभावित विभाजन का कोई भी लेनदेन स्पष्टीकरण द्वारा नियंत्रित किया जाएगा-वाद के संशोधन को अलग कर दिया जाएगा।

मान लिया कि हालांकि मैं अन्यथा प्रतिवादी न. 1 के विद्वान वकील से सहमत हूं। यह कि सी. पी. सी. के आदेश 6 नियम 17 के संदर्भ में संशोधन की अनुमति ऐसे स्तर पर दी गई थी जब मुकदमा शुरू होना बाकी था, और इसलिए विद्वत विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती नहीं की कि संशोधन की प्रयोज्यता या गैर-प्रयोज्यता से संबंधित सभी याचिकाओं पर मुकदमे के अंतिम निर्णय के समय उसके द्वारा विचार किया जाएगा, हालांकि, स्वाभाविक रूप से यह न्यायालय जिसे अनदेखा नहीं कर सकता है, वह प्रकाश के मामले (उपरोक्त) में Mr.Virk द्वारा उद्धृत निर्णय है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 में संशोधन 20 दिसंबर, 2004 से पहले अर्जित अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा, और उक्त तिथि से पहले लागू कानून अप्रभावित रहेगा।इसके बाद प्रभावित विभाजन का कोई भी लेन-देन स्पष्टीकरण द्वारा नियंत्रित किया जाएगा।"

(पैरा 17) ने आगे अभिनिर्धारित किया कि इसलिए, एक बार जब इस न्यायालय से इस याचिका में उत्पन्न होने वाले मुद्दे पर उपरोक्त (और यहां उद्धृत) कानून के अनुपात का उल्लेख करके निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, तो मेरी राय में,

वाद में मांगे गए संशोधन की अनुमति देना व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि वस्तुतः अभी इस पर विचार किया गया है कि 1956 के अधिनियम में संशोधन से पक्षों के अधिकार अप्रभावित रहेंगे, दोनों पक्षों के पिता ने स्वीकार किया कि (दोनों पक्षों द्वारा) उस तारीख से पहले (स्वाभाविक रूप से) निष्पादित की गई वसीयत के साथ मृत्यु हो गई थी।

ए. एस. विर्क, अधिवक्ता

याचिकाकर्ता के लिए।

ए. के. खुब्बेर, प्रतिवादी नं.1.

अमोल रतन सिंह,जे

(1) इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने विद्वत विचारण न्यायालय (सिविल जज, जूनियर डिवीजन, कुरुक्षेत्र), दिनांक 18.3.2009 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा प्रतिवादी नं।1 (निचली अदालत के समक्ष वादी) को आदेश 6 नियम 17 सी. पी. सी. के तहत अनुमति दी गई है।

(2) वादी द्वारा दायर वाद वह है जिसमें यह घोषणा करने की मांग की गई है कि याचिकाकर्ता द्वारा यहां स्थापित वसीयत, जिसे पक्षों के पिता द्वारा निष्पादित किया गया है, याचिकाकर्ता और प्रतिवादी नं1 भाई-बहन हैं, प्रतिवादी नं 2, 4 एक मृत भाई की संतान होने के कारण, 5 और 6 इसमें याचिकाकर्ता की बहनें हैं, (प्रतिवादी संख्या 7 के दर्जे के साथ परिवार पक्षकारों के विद्वान वकील के लिए ज्ञात नहीं है, लेकिन यह विवाद में नहीं है कि वर्तमान मुद्दा अनिवार्य रूप से याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच है)।

(3) प्रतिवादी सं.1 द्वारा माँगा गया संशोधन। वादी इस प्रभाव से है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6 में संशोधन के बाद, डब्ल्यू. ई. एफ. 9.9.2005 होने के बाद, वादी ने वाद संपत्ति का अधिकार प्राप्त कर लिया है, जो कि पैतृक और सह-आंशिक संपत्ति है।

(4) वास्तव में, वाद में किया जाने वाला संशोधन आक्षेपित क्रम में पुनः प्रस्तुत किया गया है और निम्नानुसार हैः-

“2-उ. कि वाद के शीर्षक में उल्लिखित वाद भूमि और राजस्व रिकॉर्ड की प्रतियां जो वाद के साथ संलग्न हैं, पैतृक और सह-स्थायी संपत्ति है। वादी अपने पिता पंजाब सिंह पुत्र

नथा सिंह के परिवार में जन्म के कारण वाद भूमि में 1/5 हिस्से की सीमा तक संयुक्त मालिक है, जो वाद के शीर्षक में उल्लिखित वाद भूमि में पहले सह-भागीदार थे, इसलिए सबसे खराब स्थिति में जाते हुए पंजाबसिंह किसी भी तरह से पैतृक वाद संपत्ति में वादी के हिस्से को किसी भी तरह से अलग करने में सक्षम नहीं थे और प्रतिवादियों द्वारा दावा की गई कथित वसीयत दिनाक 17.07.1988 भी वादी के शून्य और शून्य दस्तावेज होने के अधिकार पर बाध्यकारी नहीं है।यह फिर से प्रस्तुत किया जा सकता है कि Sh.Punjab सिंह किसी भी समय प्रतिवादियों के पक्ष में किसी भी वसीयत को निष्पादित नहीकिया और ऐसी स्थिति की कोई संभावना नहीं थी, फिर भी वादी हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के पारित होने के बाद वादी के लिए उपलब्ध सभी याचिकाओं को लेने का हकदार है, जिसे 5 सितंबर को भारत के महामहिम राष्ट्रपति की मंजूरी मिली थी।."

(5) स्वाभाविक रूप से, डब्ल्यू. ई. एफ. 9.9.2005 के बारे में संशोधन आने के बाद, उस याचिका को मूल रूप से दायर की गई शिकायत में नहीं लिया गया था, मुकदमा 3.1.2004 पर स्थापित किया गया था।

(6) विद्वत विचारण न्यायालय ने उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, संशोधन के लिए आवेदन को इस आधार पर अनुमति दी कि प्रतिवादी (याचिकाकर्ता) की इस आशय की याचिका कि संशोधन पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं होगा, बहस के समय लिया जाने वाला मुद्दा होगा।

(7) यह याचिका वर्ष 2009 में दायर की गई थी, उस समय जब 6.5.2009 पर प्रस्ताव का नोटिस जारी किया गया था, इस न्यायालय द्वारा विवादित आदेश के संचालन पर रोक लगा दी गई थी, जिसके बाद उक्त अंतरिम आदेश जारी रखा गया था।यद्यपि केवल विवादित आदेश के संचालन पर इस हद तक रोक लगा दी गई थी कि यह वादी द्वारा मांगे गए संशोधन की अनुमति देता है, पक्षकारों के विद्वान वकील का कहना है कि उसके बाद मुकदमा कभी आगे नहीं बढ़ा।

(8) इसके बाद, द्वारा जारी निर्देशों के आलोक में(एशियन रीसर्फेसिंगरोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो 1) के मामले मेंसुप्रीम कोर्ट अदालतने विद्वत मुकदमापर आगे बढ़ना शुरू कर दिया।

(9) इसलिए, सुनवाई की अंतिम तिथि पर, याचिकाकर्ता द्वारा एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें आदेश को जारी रखने की मांग की गई थी और इसलिए, मुद्दे में विवाद एक छोटा मुद्दा होने के कारण याचिका को ही अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने का आदेश दिया गया था।

(10) [वास्तव, याचिका को इस न्यायालय के दिनांक 17.9.2009] के एक आदेश के माध्यम से नियमित सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया था।

(11) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री विर्क प्रस्तुत करते हैं कि (प्रकाश और अन्य बनाम फुलावती और अन्य 2) संशोधन को उच्चतम न्यायालय द्वारा भी संभावित माना गया है। अदालत, मेंइसी तरह का विचार पहले ही एक समन्वय पीठ द्वारा रामेश्वर दास बनाम अजमेरो और अन्य (सी. आर.) 2007 का No.2136,1.7.2008 पर निर्णय लिया गया), में लिया जा चुका है। जिसमें संशोधन, एक पूरी तरह से अनावश्यक अभ्यास होगा और इसके परिणामस्वरूप, विवादित आदेश को दरकिनार करने की आवश्यकता है।

1 2018(2) आर. सी. आर. (सिविल) 415

2 2015 (4) आर. सी. आर. (सिविल) 952

(12) इसके विपरीत, श्री खुब्बेर, प्रत्यर्थी नं.1, यह प्रस्तुत करता है कि विद्वत विचारण न्यायालय ने किसी भी तरह से गलती नहीं की है, संशोधन की अनुमति प्रारंभिक चरण में ही दी गई थी, यानी मुकदमा शुरू होने से पहले, और इसलिए किसी भी मामले में सी. पी. सी. के नियम 17 के आदेश 6 में निहित वैधानिक जनादेश का कोई उल्लंघन नहीं होगा, जो निम्नानुसार हैः-

" अभिवचनों का संशोधन-न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी स्तर पर किसी भी पक्ष को अपने अभिवचनों को इस तरह से और ऐसी शर्तों पर बदलने या संशोधित करने की अनुमति दे सकता है जो न्यायसंगत हों, और ऐसे सभी संशोधन किए जाएंगे जो पक्षों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों को निर्धारित करने के उद्देश्य से आवश्यक हों:

बशर्ते कि मुकदमा शुरू होने के बाद संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी, जब तक कि अदालत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि उचित परिश्रम के बावजूद, पक्षकार मुकदमा शुरू होने से पहले मामले को नहीं उठा सकता था।"

(13) श्री खुब्बर भी सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर निर्भर हैं। जो

(राजेश कुमार अग्रवाल और अन्य बनाम K.K.Modi औरअन्य 3) जिसमें यह निम्नानुसार कहा गया हैः“

15. हमारे विचार में, चूंकि मुकदमा लंबित रहने के दौरान कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ था, इसलिए प्रस्तावित संशोधन को मंजूरी दी जानी चाहिए थी क्योंकि मुकदमे की मूल संरचना में कोई बदलाव नहीं हुआ है और दावा की गई राहत की प्रकृति में केवल बदलाव हुआ है।हम यह समझने में विफल हैं कि क्या अपीलकर्ताओं के लिए एक स्वतंत्र मुकदमा दायर करने की अनुमति है, उसी राहत को, जिसके लिए नए मुकदमे में अनुरोध किया जा सकता है, लंबित मुकदमे में शामिल करने की अनुमति क्यों नहीं दी जा सकती है।

16. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, वास्तविक विवाद परीक्षण मूल या मुख्य परीक्षण है और यह तय करना न्यायालय का प्राथमिक कर्तव्य है कि क्या पक्षकारों के बीच वास्तविक विवाद का निर्णय करने के लिए ऐसा संशोधन आवश्यक है।यदि ऐसा है, तो संशोधन की अनुमति दी जाएगी; यदि ऐसा नहीं है, तो संशोधन को अस्वीकार कर दिया जाएगा।इसके विपरीत, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश यह तय किए बिना कि क्या ऐसा संशोधन आवश्यक है जिस्मेंकुछ राय व्यक्त की है और संशोधन के गुण-दोष पर चर्चा में प्रवेश किया है।इस तरह के मामलों में, न्यायालय को मुकदमेबाजी को छोटा करने, दोनों पक्षों के अधिकारों को संरक्षित करने और उनकी रक्षा करने और न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बाद की घटनाओं पर भी ध्यान देना चाहिए।इस न्यायालय के निर्णयों के आधार पर यह तय किया गया है कि संशोधन का नियम अनिवार्य रूप से न्याय, समानता और सद्भावना का नियम है और संशोधन की शक्ति का प्रयोग न्यायालय के समक्ष पक्षों को पूर्ण और पूर्ण न्याय देने के व्यापक हित में किया जाना चाहिए।

(3 2006(2) आर. सी. आर. (सिविल) 577)

17. यह विचार करते हुए कि संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं, न्यायालय को संशोधन में मामले की शुद्धता या असत्यता में नहीं जाना चाहिए।इसी तरह, इसे संशोधन के गुण-दोष पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं करना चाहिए और संशोधन के माध्यम से शामिल किए जाने वाले संशोधन के गुण-दोष पर संशोधन के लिए अनुरोध की

अनुमति देने के चरण में निर्णय नहीं लिया जाना चाहिए।तत्काल मामले में उच्च न्यायालय द्वारा इस मूल सिद्धांत का पालन नहीं किया गया है।"

(केवल वर्तमान निर्णय में जोर दिया गया है)

(14) इसी तरह के प्रभाव के लिए, विद्वान वकील(गौतम सरूप बनाम आनंद सरूप और अन्य 4.) मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ/bench के फैसले पर निर्भर करते हैं।

(15) इस मामले पर विचार करने के बाद, सबसे पहले यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम 2005 की धारा 6 में किए गए संशोधन पर विचार करने के बाद, Mr.Virk, द्वार बतायी यानी प्रकाश के मामले (ऊपर) द्वारा उद्धृत मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः-

"17. संशोधन के पाठ में ही स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'सह-भागीदार की बेटी' को दिया गया अधिकार 'हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ पर और उसके बाद से' है।धारा 6 (3) अपनी प्रयोज्यता के लिए संशोधन के बाद मृत्यु की बात करती है।कानून की सरल भाषा को देखते हुए, संशोधन के पाठ द्वारा सुझाए गए स्पष्टीकरण से अलग व्याख्या की कोई गुंजाइश नहीं है।एक मूल प्रावधान का संशोधन हमेशा संभावित होता है जब तक कि या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक इरादे से यह पूर्वव्यापी न हो। श्याम सुंदर बनाम राम कुमार, **2001 (3)** आर. सी. आर. (सिविल) **754:(2001) 8** एससीसी **24,**पारस**/para no. 22** से **27**। वर्तमान मामले में न तो कोई संशोधित प्रावधान को पूर्वव्यापी प्रभाव देने के लिए प्रावधान व्यक्त करें और न ही उस प्रभाव के लिए आवश्यक इरादा।विभाजन के पंजीकृत होने की आवश्यकता का ऐसे विभाजन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जो कानून के संचालन द्वारा है, असंशोधित प्रावधान के अनुसार उत्तराधिकार के उद्घाटन पर वैधानिक काल्पनिक विभाजन पर कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता है।संशोधन के इरादे और प्रभाव पर थोड़ी देर बाद विचार किया जाएगा।इस निष्कर्ष पर, उच्च न्यायालय के विचार को कायम नहीं रखा जा सकता है।

(4 2006 (4) आर. सी. आर. **(**सिविल**) 248)**

23. तदनुसार, हमारा मानना है कि संशोधन के तहत अधिकार 9 सितंबर, 2005 को जीवित सह-भागीदारों की जीवित बेटियों पर लागू होते हैं, भले ही ऐसी बेटियां कब पैदा होती

हैं।उक्त तिथि से पहले लागू कानून के अनुसार 20 दिसंबर, 2004 से पहले हुए विभाजन सहित निपटान या अलगाव अप्रभावित रहेंगे।इसके बाद प्रभावित विभाजन का कोई भी लेन-देन स्पष्टीकरण द्वारा नियंत्रित किया जाएगा।"

(केवल वर्तमान निर्णय में जोर दिया गया है)

(16) Mr. Virk द्वारा भरोसा किए गए समन्वय पीठ के फैसले में, अर्थात रामेश्वर दास मामले (उपरोक्त) में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया थाः-

"13. नतीजतन, प्रतिवादी नं1-अभियुक्त को विद्वत विचारण न्यायालय द्वारा अपनी शिकायत में संशोधन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी ताकि वह 1956 के अधिनियम की संशोधित धारा 6 पर भरोसा कर सके।

(17) हालाँकि मैं अन्यथा प्रतिवादी नहीं के लिए विद्वान वकील से सहमत हूँ।1 यह कि सी. पी. सी. के आदेश 6 नियम 17 के संदर्भ में संशोधन की अनुमति ऐसे स्तर पर दी गई थी जब मुकदमा शुरू होना बाकी था, और इसलिए विद्वत विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती नहीं की कि संशोधन की प्रयोज्यता या गैर-प्रयोज्यता से संबंधित सभी याचिकाओं पर मुकदमे के अंतिम निर्णय के समय उसके द्वारा विचार किया जाएगा, हालांकि, स्वाभाविक रूप से यह न्यायालय जिसे अनदेखा नहीं कर सकता है, वह प्रकाश के मामले (उपरोक्त) में Mr.Virk द्वारा उद्धृत निर्णय है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 में संशोधन 20 दिसंबर, 2004 से पहले अर्जित अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा, और उक्त तिथि से पहले लागू कानून अप्रभावित रहेगा।इसके बाद प्रभावित विभाजन का कोई भी लेन-देन स्पष्टीकरण द्वारा नियंत्रित किया जाएगा।"

(18) इसलिए, एक बार जब इस न्यायालय को इस याचिका में उत्पन्न होने वाले मुद्दे पर उपरोक्त (और यहां उद्धृत) कानून के अनुपात का उल्लेख करके निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, तो मेरी राय में यह वाद में मांगे गए संशोधन की अनुमति देना व्यर्थ है, वस्तुतः अभी इस पर विचार किया गया है कि 1956 के अधिनियम में संशोधन से पक्षों के अधिकार अप्रभावित रहेंगे, दोनों पक्षों के पिता ने स्वीकार किया कि (दोनों पक्षों द्वारा) उस तारीख से पहले (स्वाभाविक रूप से) निष्पादित की गई वसीयत के साथ 1.8.1988 पर उनकी मृत्यु हो गई थी।

(19) भले ही विचाराधीन वसीयत को चुनौती दी गई हो और वाद के इस तरह के संशोधन से वसीयत की वास्तविक वैधता/अयोग्यता को साबित करने वाले पक्षों के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, फिर भी विरासत के साथ स्वीकार किया गया है कि 1.8.1988 पर खोला गया है, यानी उस तारीख से लगभग 16 साल पहले जब से बेटियां सह-आंशिक संपत्ति में अधिकार का दावा कर सकती हैं, सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार, मेरी राय में संशोधन की अनुमति देना पूरी तरह से एक व्यर्थ अभ्यास होगा।

(20) बेशक, यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ के श्री विर्क द्वारा उद्धृत निर्णय में, यह देखा गया था कि वादी की ओर से साक्ष्य दर्ज किया गया था (और इसलिए कि उस मामले में मुकदमा शुरू हो गया था), जो वर्तमान में मामला नहीं है, हालाँकि वाद में संशोधन की अनुमति देने से इनकार करने का आधार यह था कि 1956 के अधिनियम की धारा 6 में संशोधन केवल संभावित रूप से काम करना है न कि पूर्वव्यापी रूप से।

(21) वास्तव में, यह कहने की आवश्यकता है कि यदि उच्चतम न्यायालय के निर्णय का अनुपात याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा विशेष रूप से उद्धृत नहीं किया गया होता, तो संभवतः इस न्यायालय ने विवादित आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया होता, वादी द्वारा मांगा गया संशोधन मुकदमे के शुरू होने से पहले एक चरण में था, जिसमें याचिकाकर्ता-प्रतिवादी स्पष्ट रूप से सभी याचिकाओं को लेने के लिए स्वतंत्र था जो उसके लिए उपलब्ध थे, क्योंकि संशोधन संभावित या पूर्वव्यापी रूप से लागू होता है।हालाँकि, निर्णय का अनुपात उपरोक्त होने के कारण, इस न्यायालय के लिए स्वाभाविक रूप से इसके प्रभाव का उल्लेख करना आवश्यक है, इसलिए जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, वाद में संशोधन का उद्देश्य वास्तव में विफल हो जाता है।

(22) इसलिए, यहां तक कि प्रतिवादी नं. के लिए विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णय को भी ध्यान में रखते हुए।1 राजेश कुमार अग्रवाल के मामले (उपर्युक्त) में, उस निर्णय का अनुपात (जैसा कि उसके पैराग्राफ 16 में कहा गया है) इस आशय का है कि यह तय करना न्यायालय का प्राथमिक कर्तव्य है कि पक्षकारों के बीच वास्तविक विवाद का निर्णय करने के लिए संशोधन आवश्यक है या नहीं।

(23) भले ही उस फैसले के पैराग्राफ 17 में यह भी कहा गया है कि अदालत को संशोधन में मामले की शुद्धता या झूठ में नहीं जाना चाहिए, और न ही उसे किए जाने वाले संशोधन के

गुण-दोष पर कोई निष्कर्ष दर्ज करना चाहिए, फिर भी वर्तमान मामले में, इस न्यायालय की राय, "वास्तविक विवाद परीक्षण", यह है कि प्रतिवादी नहीं है या नहीं।1 (वादी) सह-पक्षकार की हैसियत से अपने पिता की संपत्ति में एक हिस्से का दावा भी कर सकती है, उस अधिकार के साथ जो किसी भी मामले में उसे प्रकाश के मामले (उपरोक्त) में फैसले के अनुपात के संदर्भ में 20.12.2004 से पहले उपलब्ध नहीं है, और विरासत को स्वीकार किया जाता है कि उस तारीख से 16 साल पहले, 01.08.1988 पर खोला गया था, प्रतिवादी-वादी द्वारा मांगा गया संशोधन पूरी तरह से व्यर्थ पाया जाता है।

(24) हालाँकि, यह स्वाभाविक रूप से पूरी तरह से स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने वादी द्वारा मांगे गए संशोधन पर केवल टिप्पणी की है, जो पूरी तरह से उद्देश्यहीन है, यहाँ ऊपर कही गई किसी भी बात को वादी द्वारा पहले से स्थापित मामले के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी नहीं माना जाएगा, क्योंकि अपने पिता की संपत्ति पर उसका अधिकार या तो प्राकृतिक विरासत के आधार पर या किसी अन्य आधार के आधार पर है जो उसने वाद में दावा किया है, (सह-भागीदार होने के आधार के अलावा), और उसके द्वारा किए गए अन्य सभी दावों को उस न्यायालय द्वारा दोनों पक्षों के नेतृत्व वाले साक्ष्य के गुण-दोष पर पूरी तरह से देखा जाएगा।

(25) नतीजतन, इस याचिका की अनुमति दी जाती है, जिसमें विवादित आदेश को दरकिनार कर दिया जाता है।विद्वत विचारण न्यायालय अब से केवल पक्षों के मूल अभिवचनों को ध्यान में रखते हुए, वाद में संशोधन को आगे बढ़ाएगा जिसे यहाँ ऊपर अलग कर दिया गया है।

सुमती जुंद

अस्वीकरण स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यन्वयन के उद्देश्य के लिए इसका उपयुक्त रहेगा ।

अनुवादक

गरिमा गिलानी